Airo International Research Journal
Volume XVI, ISSN: 2320-3714
May 2018, Impact Factor: 0.75 to 3.19
UGC Approval Number 63012

शास्त्र–परम्परा का महत्त्व

डॉ० जगतनारायण
माँ दुर्गानिगर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सारांश

भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों पर कुठारघात हो रहा है जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं । कटुता, स्वार्थपरता आदि दुष्प्रवृतियां जाने–अनजाने में हमारे आचरण में आ रही हैं जो व्यक्तित्व को धूमिल करने के साथ ही असामाजिकता को बढ़ावा देती हैं । भारतीय संस्कृति के मूल वेदों में स्थान–स्थान पर मानव कल्याण की भावना का, सत्य की भावना का, विश्वबन्धुत्व की भावना का, कर्त्तव्य बोध का, चरित्र की शुद्धि एवं कुशलता, मानवीय सम्बन्धों की पावनता का, राज्य तथा राजा का, सभी विद्याओं का, सामाजिक एवं हितकारी चिन्तन का, सत्कर्म एवं अतिथि सत्कार का, ज्ञानार्जन के साधनों का तथा अन्य वर्णन विदित है। समझदारी इसी में है कि हम जीवन की वास्तविकता को समझें और सही समय पर सही मार्ग पर सही कदम रखें जिससे अपने कल्याण के साथ–साथ दूसरों के कल्याण का भी माध्यम बन सकें। सही अर्थ में तभी हमारा जीवन सफल होगा और ऐसे ही व्यक्तित्व के निर्माण से देश की सभी समस्याओं का निदान भी सम्भव है।

संस्कृति शब्द का अर्थ सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से सुट् आगम करके ‘क्तिन्’ प्रत्यय के योग से निष्पन्न माना गया है, जिस का अर्थ है अलंकृत, सम्यक्- कृति अथवा चेष्टा ।[1] संस्कृति मानव को सुव्यवस्थित सामाजिक-व्यवहार प्रदान करती है। व्यक्ति समाज में रहकर अपनी संस्कृति के अनुसार जीवन व्यतीत कर आनंद प्राप्त कर सकता है। डॉ० रामबेचन पांडेय ने योग्य ही लिखा है कि संस्कृति समाज को वैशिष्ट्य एवं व्यक्तित्व देती है ।[2] संस्कृति का दूसरा अर्थ करें तो सम्यक्-कृति अर्थात् परमेश्वर की श्रेष्ठ कृति मानव ही है। परमेश्वर की अनुपम कृति मानव को सदैव श्रेष्ठता के उन्नत शिखर पर स्थिर रहने का मार्गदर्शन देती हुई, हमारे ऋषिमुनियों के द्वारा सर्जन की हुई एवं तदनुकूल आचारसंहिता का कालक्रम से संस्कृति में समावेश हो गया ।[3] भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न संस्कृति होती है । संस्कृति की अपनी-अपनी विशेषताएं रहती हैं। इसी तरह पौर्वात्य एवं पाश्चात्य संस्कृति में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है। जैसे पाश्चात्य देशवासी पौर्वात्य देशवासियों को असभ्य और असंस्कृत मानते हैं तो पौर्वात्यदेशवासी भी पाश्चात्यदेशवासियों को अध्यात्मशून्य और असंस्कृत मानते हैं । इस प्रकार संस्कृति में हमारी भावनाओं, मूल्यों, शैलियों और बौद्धिक अभिव्यक्तियों का समावेश होता है । वोगार्ड के मतानुसार संस्कृति समाज के रीतिरिवाजों, परम्पराओं और चालू व्यवहार के प्रतिमानों से बनती है। संस्कृति समाज का मूल धन है। वह मूल्यों की ऐसी पूर्ववर्ती सृष्टि है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है और विकसित होता है।

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा है। ये मानवजाति के लिए प्रकाशस्तम्भ है । विश्व को ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्व-शान्ति, विश्व-कल्याण एवं विश्व-बन्धुत्व के प्रथम उद्घोषक एवं पोषक हैं । प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति तथा समाज का विशद चित्रण वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है वैदिक साहित्य हिन्दू धर्म के प्राचीनतम स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला तथा विश्व का प्राचीनतम स्रोत है । वैदिक साहित्य को ‘श्रुति’ कहा जाता है, क्योंकि (सृष्टि/नियम) कर्ता ब्रह्मा ने विराटपुरुष भगवान् की वेदध्वनि को सुनकर ही प्राप्त किया है । अन्य ऋषियों ने भी इस साहित्य को श्रवण-परमपरा से ही ग्रहण किया था । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सभी वेदों के कई उपनिषद्, आरण्यक तथा उपवेद आदि भी आते हैं जिनका विवरण मिलता है । इनकी भाषा संस्कृत है जिसे अपनी अलग पहचान के अनुसार वैदिक संस्कृत कहा जाता है- इन संस्कृत शब्दों के प्रयोग और अर्थ कालान्तर में बदल गए

या लुप्त हो गए माने जाते हैं । ऐतिहासिक रूप से प्राचीन भारत और हिन्दू-आर्य जाति के बारे में इनको एक अच्छा सन्दर्भ माना जाता है । संस्कृत भाषा के प्राचीन रूप को लेकर भी इनका साहित्यिक महत्त्व बना हुआ है ।

भारत की संस्कृति बहुआयामी है जिसमें भारत का महान् इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई । भारत में बौद्ध धर्म का धर्म एवं स्वर्ण युग फली-फूली अपनी खुद की प्राचीन विरासत शामिल है । इसके साथ ही पड़ोसी देशों के रिवाज, परम्पराओं और विचारों का भी इसमें समावेश है। पिछली पाँच सहस्राब्दियों से अधिक समय से भारत के रीति-रिवाज, भाषाएँ, प्रथाएँ और परंपराएँ इसके एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धों में महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती । भारतीय संस्कृति विश्व के इतिहास में कई दृष्टियों से विशेष महत्त्व रखती है। भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है ।

संसार के संस्कृत साहित्य की शुरूआत होती है 5500 से 5200 ईसा पूर्व के बीच संकलित ऋग्वेद से जो कि पवित्र भजनों का एक संकलन है । भारत में ऋग्वेद के समय से कविता के साथ-साथ गद्य रचनाओं की मजबूत परंपरा है। कविता प्रायः संगीत की परम्पराओं से सम्बद्ध होती है। रामायण और महाभारत प्राचीनतम संरक्षित और आज भी भारत के जाने माने महाकाव्य है; उनके कुछ और संस्करण दक्षिण पूर्व एशियाई देशों जैसे की थाईलैंड मलेशिया और इंडोनेशिया में अपनाए गए हैं ।

भारतीय संस्कृति का बीज हमें वैदिक-संस्कृति में मिलता है। वेदों में घुमंतु चरवाहों के स्थिर-निकेतन कृषीवलों का, ग्रामों का एवं पुरों का उल्लेख मिलता है। वैदिक-ऋषि बाद तक नगर-जीवन के पक्षधर न होकर अरण्यवास के प्रेमी थे ।[4] वेदों में वैदिककाल की ग्राम्य-संस्कृति और नगरसंस्कृति का उल्लेख मिलता है। वैदिककाल में भी आज की तरह गाँवों की अपेक्षा नगरों में ज्यादा लोग रहते थे । गाँव में एक मुखिया होते थे और उनको ग्रामणी कहा जाता था ।[5] लोग ग्रामणी का चयन करते थे । राजा के चयन और निर्वाचन के लिए ग्रामणिओं का भी स्थान था । डॉ० कपिलदेव द्विवेदी के मतानुसार किसान, कुम्हार, सेवक, पशुपालक, वैद्यादि गाँवों में रहने वाले थे । प्रायः गाँवों में किसान और पशुपालक लोग ही अधिक थे । वैदिककाल में कृषि को अधिक महत्त्व दिया जाता था । इसलिए कृषिविषयक अनेक सूक्त मिलते हैं।[6] उस समय गौ को भी गौरव दिया जाता था ।[7]

प्राचीनकाल में ग्राम्यसंस्कृति में प्रायः संयुक्त कुटुम्ब-व्यवस्था थी।[8] कुटुम्ब में सब मिलजुल कर रहते थे और कुटुम्ब में बुजुर्ग लोगों का सम्मान था । आधुनिक युग में भी गाँवों में संयुक्त कुटुम्ब-व्यवस्था दिखाई पड़ती है। वैदिक काल में सब लोगों के लिए सुख की कामना की जाती थी -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ।।[9]

वैदिक संस्कृति में चार वर्णों की व्यवस्था थी ।[10] समाजरूपी शरीर के ये चार अंग थे । जैसे मनुष्य शरीर में सब अंगों का अपना महत्त्व है वैसे ही वैदिककाल में इन सभी वर्णों का महत्त्व था। समाजव्यवस्था सुव्यवस्थित रीति से चले इस लिए वर्णव्यवस्था थी। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् कहते हैं कि गुण और कर्म के आधार पर मैंने वर्णव्यवस्था की है।[11] वैदिककाल में मनुष्य में ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं था । ऋषि अपने से छोटे वर्ण में उत्पन्न व्यक्तियों को नमन किया करते थे ।[12]

भारतीय संस्कृति तो यहां तक कहती है कि यदि आपके पास धन न भी हो तो प्रेममय वचनों से ही अतिथि की पूजा करनी चाहिए-

"यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाऽपि अतिथिः पूज्य एव।"[13]

भारतीय संस्कृति पाप एवं हिंसा से रहित धनार्जन पर बल देती हुई व्यक्ति में घमण्ड एवं उद्धता के विपरीत नम्रता की कामना करती है।[14]

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य कामनाओं, लोभ एवं क्रोध के अभिभूत होकर अनेक निन्दनीय कर्मों को करने में प्रवृत्त होता जा रहा है, किन्तु भारतीय संस्कृति 'श्रीमद्भगवद्गीता' के माध्यम से काम, क्रोध एवं लोभ की निन्दा करते हुए इन्हें दुःखों का कारण बताती है ।[15]

'ईशावास्योपनिषद्' में धन के प्रति आसक्ति का त्याग करके इसका उपभोग करने का निर्देश दिया गया है -

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।"[16]

साहित्य में भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण पक्षों का आदर्शरूप वर्णित है । इन आदर्श पक्षों को अपनाकर एक सुन्दर स्वस्थ एवं सुदृढ़ समाज का सृजन किया जा सकता है।

वेद के अनुसार दुराचारी व्यक्ति सत्य के मार्ग को पार नहीं कर सकते ।[17] इसी प्रकार वैदिक ऋषि कहते हैं कि मेरे मन की भावनाएं सच्ची हों क्योंकि देवयान मार्ग सुकृति अर्थात् सदाचारी व्यक्तिके लिए ही हैं ।[18] अन्यत्र भी प्रार्थना की गई है कि हे सर्वगुणी देव ! आप मुझे दुश्चरित से पृथक् करो और सब ओर से सदाचार का भागी बनाओ ।[19] वह सत्य आचरण की भावना ही सारे विश्व-प्रपंच का संचालन करती है ।

भारतीय संस्कृति का अर्थ है प्रकाश के मार्ग में अनुष्ठान करने से प्राप्त होने वाली संस्कार-सम्पन्नता । 'भा' और 'रत' हुआ भारत । 'भा' माने प्रकाश में अर्थात् प्रकाश के मार्ग में और 'रत' माने दत्तचित्त होकर अनुष्ठान करने से जो संस्कार-सम्पन्नता मनुष्य में बढ़ती है वही है भारतीय संस्कृति और भारतीय संस्कृति का अजस्र स्रोत है वेद । वह वेद भगवान् जिसकी अक्षय ज्ञान-गंगा की धारा सदियों से इस धरती पर जन-मानस को पवित्र कर रही है। "सा प्रथमा संस्कृति-र्विश्ववारा"[20] अर्थात् विश्व का वरण करने वाली वह सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है और यही देवसंस्कृति विश्व की सभी सभ्यताओंऔर संस्कृतियों की जननी है। वेद में मनुष्य के विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक और आत्मिक बल को बढ़ाने के लिए उदात्त आचारशास्त्र का संकलन है जो भारतीय संस्कृति के लिए मेरुदण्ड का काम करता है।

अथर्ववेद में पृथ्वी को माता बताकर अपने आपको उसका पुत्र कहा गया है।[21] भारतीय संस्कृति में "मातृभूमि" की धारणा का यह प्रथम और अनूठा उद्गार है। भूमि विविध ओषधि वनस्पतियों से सब प्राणियों का उसी प्रकार भरण-पोषण करती है जिस प्रकार कोई माता अपने दूध से अपने बच्चों का पालन करती है। भूमि अटल है, दृढ़ है, अपने शिशुओं के लिए सब कुछ सहन करती है। भूमि गुण, कर्म, स्वभाव व्यवसाय और प्रवृत्तियों में अनेकता होने पर भी सबसे समता का व्यवहार सिखाती है।[22]

अथर्ववेद में कहा गया है कि यह धरती विभिन्न कर्त्तव्य-कर्मों को करने वाले, भिन्न प्रकार की भाषाओं को बोलने वाले, विविध रूप, रंग, आकार-प्रकार वाले विशाल जन-समाज का इसी प्रकार पालन करती है जैसे एक ही घर में रहने वाले प्राणी मिलजुल कर अपना जीवनयापन करते हैं ।[23]

वेदों में गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध में जो उदात्त भाव प्रकट किए गए हैं वे भी भारतीय संस्कृति की अपूर्व निधि है । अथर्ववेद के मन्त्रों में परिवार के सभी सदस्यों में समभाव, सौहार्द और एकता की भावना व्यक्त की गई है।[24] जब परिवार स्नेहिल और मर्यादित वातावरण में रहेगा तो सब काम सुचारू रूप से चलेंगे और राष्ट्र उन्नति करेगा ।

ऋग्वेद कह रहा है कि यहाँ सब मनुष्य भाई-भाई हैं, इनमें कोई बढ़ा या छोटा नहीं है।[25] इस समानता के भाव को धारण करते हुए, सब ऐश्वर्य और उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करते हैं और आगे बढ़ते हैं । एक ऋचा[26] में कहा गया है कि मार्ग पर सभी चलने वालों का समान अधिकार होता है। ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त (10. 191) तो सम्भावना की प्रेरणा देने वाला वेद के समतापूर्ण दृष्टिकोण का ज्वलन्त उदाहरण है। इस सूक्त में सब जनों की क्रियाओं, गति, विचारों और मन-बुद्धि के पूर्ण सामंजस्य की प्रेरणा दी गई है। आज के विघटनकारी युग में न केवल भारतवर्ष को अपितु समग्र संसार को इस समता एवं समष्टि की भावना की आवश्यकता है।

वेद में उद्घोषपूर्वक कहा गया है कि मैं मनुष्यों सहित सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं और हम परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।[27] अन्यत्र न केवल मनुष्यों के कल्याण की अपितु गौओं अर्थात् जगत् के अन्य प्राणियों के कल्याण की भी कामना की गई है।[28] यजुर्वेद दोपाओं और चौपायों के कल्याण और सुख की बात करके भारतीय संस्कृति की विशेषता को दर्शा रहा है ।[29]

भारतीय संस्कृति प्रतिपादित पुरुषार्थ-भावना का अनुपम निदर्शन है। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्ट्य का आधार वेद ही है। वेद का आदेश है कि प्राणी आलस्य, निराशा और अकर्मण्यता और लालच को त्याग कर सौ वर्षों तक कर्मशील, पुरुषार्थी और उद्यमी बना रहे । वेद कहता है कि देवता भी पुरुषार्थी व्यक्ति के ही सहायक होते हैं और पुरुषार्थ से ही विजयश्री की प्राप्ति होती है ।[30] पुरुषार्थ ही जीवन है, पुरुषार्थ ही सुख का मूल है और पुरुषार्थ से ही सब मनोरथों की सिद्धि होती है।

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के मूल वेदों में स्थान-स्थान पर मानव-कल्याण की भावना का, ऋत और सत्य की भावना का, बाँट कर खाने की भावना का, विश्वबन्धुत्व की भावना का, निष्पाप होने की प्रार्थना का, यज्ञमय जीवन की सफलता का, ओजपूर्ण तेजस्वी जीवन जीने की कामना इत्यादि का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है । यही है भारतीय संस्कृति और यही संस्कृति है जो निरन्तर शाश्वत सुख और शान्ति का भण्डार है।

संस्कृति में मनुष्य के पूर्वजों के आचरण, मार्गदर्शित विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं, आचारसंहिताओं, सुविधाओं और प्रतिमानों का समावेश होता है, जिनसे मनुष्य अपना जीवन सुव्यवस्थित कर सकता है और आनन्द प्राप्तकर सकता है । वैदिक संस्कृति वैसी ही संस्कृति है उससे मनुष्य को जीवन जीने की वैज्ञानिक सूझ मिलती है। वहां मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने का उपाय दिखाया गया है और वह सुख लोग प्राप्त करते थे । भागदौड़ के आज के युग में भी मनुष्य वैदिक-संस्कृति का मार्गदर्शन प्राप्त कर चिन्तामुक्त हो कर सुखी रह सकता है ।

भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों पर कुठारघात हो रहा है जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने आ रहे हैं । कटुता, स्वार्थपरता आदि दुष्प्रवृतियां जाने-अनजाने में हमारे आचरण में आ रही हैं जो व्यक्तित्व को धूमिल करने के साथ ही असामाजिकता को बढ़ावा देती हैं । भारतीय संस्कृति के मूल वेदों में स्थान-स्थान पर मानव कल्याण की भावना का, सत्य की भावना का, विश्वबन्धुत्व की भावना का, कर्त्तव्य बोध का, चरित्र की शुद्धि एवं कुशलता, मानवीय सम्बन्धों की पावनता का, राज्य तथा राजा का, सभी विद्याओं का, सामाजिक एवं हितकारी चिन्तन का, सत्कर्म एवं अतिथि सत्कार का, ज्ञानार्जन के साधनों का तथा अन्य वर्णन विदित है। समझदारी इसी में है कि हम जीवन की वास्तविकता को समझें और सही समय पर सही मार्ग पर सही कदम रखें जिससे अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों के कल्याण का भी माध्यम बन सकें। सही अर्थ में तभी हमारा जीवन सफल होगा और ऐसे ही व्यक्तित्व के निर्माण से देश की सभी समस्याओं का निदान भी सम्भव है।

संदर्भ :

---

1. महाभारत में भारतीय संस्कृति, पृ० 1
2. भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, पृ० 18
3. संस्कृति पूजन, भाववंदना, पृ० 1
4. फाइण्डशन्स आफ इन्डियन कल्चर, पृ० 72
5. ग्रामणीरसि.......... अभिषिक्तः । अथर्व०, 19/31/12
6. ऋ०, 10/101/4-57, यजु०, 12/67-71, अथर्व०, 3/17/1-9
7. तदेव, 6/28/1
8. तदेव, 10/85/46
9. श्वेताश्वतरोपनिषद्, शान्तिमन्त्रः ।
10. ऋ०, 10/90/12
11. गीता, 4/13
12. यजु०, 17/34
13. हितोपदेश, मित्रलाभ ।

14. ऋ०, 1.185.3
15. गीता, 3.37; 16.21
16. ईशोप०, 1
17. ऋ०, 9.73.6
18. तदेव, 10.128.4; अथर्व०, 18.4.14
19. यजु०, 4.28
20. तदेव, 7.14
21. अथर्व०, 12.1.12
22. तदेव, 12.1.15
23. तदेव, 12.1.45
24. तदेव, 3.30.2; 3.30.3; 3.30.6
25. ऋ०, 5.60.5
26. तदेव, 2.13.2
27. यजु०, 36.18
28. अथर्व०, 1.31.4
29. यजु०, 36.8
30. अथर्व०, 20.18.3